JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

ब्रिटिशकालीन अल्मोड़ा जनपद में भूराजस्व नीति (1815.1947 ई0)

डॉ॰ (श्रीमती) भारती बिष्ट
इतिहास विभाग
हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद
एम॰जे॰पी॰ रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय,
बरेली (उत्तर प्रदेश)

सारांश

चन्द, कत्यूरी तथा गोरखा शासन की कुमाऊँ में अपनी राजस्व नीति रही। किंतु इसमें कोई सन्देह नहीं कि अंग्रेजों ने अल्मोड़ा सहित सम्पूर्ण कुमाऊँ कमिश्नरी में जो राजस्व प्रणाली लागू की थी वह पूर्व प्रशासकों द्वारा लागू प्रणाली से काफी अच्छी थी। लेकिन अंग्रेज प्रशासकों को इस आरोप से मुक्त नहीं किया जा सकता कि उन्होंने यहां की भोली भाली जनता का शोषण किया जैसा कि अंग्रेजों की भारत में नीति थी। यद्यपि अंग्रेजों को इस बात का गर्व था कि उन्होंने इस क्षेत्र से प्राप्त होने वाले राजस्व में वृद्धि की थी लेकिन वास्तविक रूप में यह राजस्व वृद्धि कृषि उपज में वृद्धि के कारण नहीं हुई थी। प्रारम्भ में यहां जनता गोरखा राज्य की कटु स्मृति, अशिक्षा तथा पारस्परिक एकता के अभाव इत्यादि कारणों से मालगुजारी का भुगतान चुपचाप करती रही लेकिन 1930 में नये बंदोबस्त जिसमें 33 प्रतिशत कर वृद्धि का प्रावधान का जनता द्वारा विरोध करना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि राजस्व वृद्धि उचित नहीं थी। मालगुजारी के अतिरिक्त अन्य स्रोतों में आबकारी प्रमुख था।

भू–राजस्व –

सरकार व जनता के बीच जमीन के लेन–देन के सम्बन्ध में जो लेखा–जोखा होता था उसे बन्दोबस्त कहा गया। बन्दोबस्त का अर्थ व्यवस्था करने से था। प्रत्येक गांव की जमीन किस किस्म की है, उसमें कैसी पैदावार होती है, कितनी जमीन नापी गयी है, कितनी बेनाप है सरहदें कहॉ तक हैं, हिस्सेदार कौन है, असामी सिरतान व खायकर कितने हैं तथा क्या–क्या चीजें पैदा होती हैं इत्यादि सम्पूर्ण विवरण बन्दोबस्त रिपोर्टों में छपता था। ब्रिटिश शासन काल (1815 ई॰ से 1947 ई॰ तक) के दौरान अल्मोड़ा जनपद में कुल मिलाकर 11 बन्दोबस्त किये गये। इन बन्दोबस्तों की सूची निम्नलिखित है।

बन्दोबस्त संख्या	वर्ष व कमिश्नर का नाम (जिसके समय में बन्दोबस्त किया गया)	मालगुजारी
पहला भूमि बन्दोबस्त	1815 ई॰ में गार्डनर ने किया	70,699
दूसरा	1817 ई॰ में मि॰ ट्रेल ने किया	73,459
तीसरा	1818 ई॰ में मि॰ ट्रेल ने किया	79,930
चौथा	1821 ई॰	87,320
पांचवा	1823 ई॰	96,425
छठा	1829 ई॰	104,980
सांतवा	1832–33 ई॰	107,044
आठवां	–	-
नवां	1842 ई॰ में बैटन ने किया	112,264
दसवां	1863–64 ई॰ में बैकेट ने किया	226,700
ग्यारहवां	1899–1902 ई॰ में गूज ने किया	279,086

आंठवे बन्दोबस्त में कर्नल गोअन द्वारा पिछला (सांतवा) बन्दोबस्त दोहराया गया था।

बैकेट द्वारा किया गया भूमि–बन्दोबस्त (दसवां बन्दोबस्त)

1863–64 ई॰ में बैकेट द्वारा दसवां भू–बन्दोबस्त किया गया। यह बन्दोबस्त तीस वर्ष के लिए निश्चित किया गया। इस बन्दोबस्त के समय जमीन की ठीक– ठीक नाप नहीं की गयी वरन् 1923 ई॰ में ट्रेल द्वारा अंकित आंकलन पर विश्वास किया गया। यह आंकलन सीमा सम्बन्धी मामलों के अतिरिक्त अधिक काम का नहीं था। ट्रेल द्वारा निर्मित यह आंकलन देशीय (भारतीय) अधिकारियों द्वारा, जिन्हें कि

गांव के पधानों ने बुलाया था बनाया गया था। इसमें सीमा एवं क्षेत्रफल का आंकलन केवल अन्दाज पर आधारित था जिससे किसी भी गांव के आकार का अन्दाज मोटे तौर पर मिलता था। बैटन द्वारा बनायी गयी सूची में खातेदारों व काश्तकारों की संख्या तथा उनके द्वारा दिये जाने वाले राजस्व के विषय में सूचना उपलब्ध थी। यह सूची ग्रामीणों द्वारा स्वयं बनायी गयी थी जिसका उद्देश्य खातेदारों (खैकर) की संख्या को छिपाना था जिससे कि उनका गांव यथा संभव गरीब दिखायी दे। अतः बहुत ही कम खातेदारों (खेकरों) के बीच राजस्व का विभाजन किया गया। दसवें बन्दोबस्त में जिन प्रमुख सिद्धान्तों के आधार पर नाप की गयी थी वे निम्न है–

1.उस जमीन को छोड़कर जिसमें जंगली पेड़ थे, समस्त भूमि की नाप की जानी थी लेकिन जंगलों की साफ की हुई जमीन को जोतने के बाद नहीं मापा जाता था इस जमीन को खिल अथवा कौनला के नाम से जाना जाता था।

2.समस्त जमीन को उत्पादकता के गुणों के आधार पर चार श्रेणियों में बांटा जाता था –क. सिचिंत जमीन, ख. अच्छी असिंचित जमीन, ग. द्वितीय श्रेणी की असिंचित जमीन, घ. आकस्मिक उत्पादक वाली जमीन जिसे ''इरजान'' कहा जाता था।

लेकिन बाद में यह सिद्धान्त व्यावहारिक नहीं पाया गया तथा जांच करने वाले व्यक्ति भी इन निर्देशों पर दृढ़ नहीं रहे। अतः उन्होंने समस्त आबाद जमीन को तीन श्रेणियों में विभाजित किया–क. स्थायी आजाद भूमि, ब. आकस्मिक आबाद भूमि, ग. बेकार भूमि।

जांच अधिकारियों द्वारा भूमि नाप लिए जाने के पश्चात् बैकेट ने एक नयी प्रथा लागू की जिसके द्वारा गांव की समस्त भूमि के लिए एक ही मापदण्ड निर्धारित किया गया। तीनों श्रेणियों में से प्रत्येक श्रेणी की भूमि को इस मापदण्ड के अधीन इस प्रकार लाया गया कि सिचिंत भूमि का डयोढ़ा तथा आकस्मिक आबाद भूमि का आधा क्षेत्रफल दिखाया गया। (जमीन की ऐसी किस्म जो घटिया किस्म की समतल जमीन थी जिसमें कभी–कभी खेती होती थी।)

इस प्रकार दस ''बीसी'' (एक बीसी = 20 नाली, लगभग एक एकड़) सिंचित भूमि के क्षेत्रफल को उस मापदण्ड के आधार पर तीस बीसी निर्धारित किया गया, प्रथम श्रेणी की बारह बीसी असिंचित जमीन को अट्ठारह बीसी के बराबर माना गया तथा बारह इरजान को छः बीसी माना गया अथवा यह समस्त 54 बीसी (30+18+6) द्वितीय श्रेणी की असिंचित भूमि के निर्धारण के प्रयोजनार्थ मानी गयी। अल्मोड़ा जिले के लिए लगान दर निर्धारित करने में कुछ अन्य बातें भी ध्यान में रखी गयी जैसे अनाज के भाव जनसंख्या, जिले में चाय उगाने वाले लोगों द्वारा कमाया गया कुल धन तथा रानीखेत के सार्वजनिक निर्माण द्वारा कमाया गया धन इत्यादि। बैकेट ने पूरे जिले की जांच के लिए नाप भूमि के प्रत्येक सौ

एकड़ की आबादी का औसत, ऐसे क्षेत्र की आबादी का औसत जिसमें की आधी भूमि ''इरजान'' हो तथा पूरे क्षेत्रफल के तीन चौथाई भू–भाग का औसत निकाला। इसके साथ–साथ प्रत्येक गांव के सम्बन्ध में संकलित आंकड़ों की भी निर्धारण में मदद ली गयी। इस निर्धारण में ग्रामीणों द्वारा नाप पूरा क्षेत्र श्रेणी के आधार पर आबाद भूमि इरजान भूमि का आधा भाग तथा श्रेणी के आधार पर समस्त क्षेत्रफल का तीन–चौथाई भाग शामिल था।

बैकेट के सम्मुख जो कुछ भी पूर्व संकेत थे उनके आधार पर उसने प्रत्येक गांव के लिए सांख्यिकी औसत दर निकालने की कोशिश की, लेकिन उसके सम्मुख एक परेशानी आ गयी कि इस प्रकार बनाये गये क्षेत्र के लिए लगान की क्या दर लागू की जाय, अतः लगान सूचियों के अभाव में अब केवल एक ही विकल्प था कि लगान की दर का अन्दाज प्रत्येक श्रेणी की भूमि से होने से होने वाली पैदावार के आधार पर लगाया जाए। अतः इन समस्त चीजों को ध्यान में रखते हुए एक रूपया प्रति बीसी औसत दर निर्धारित की गयी जो कि द्वितीय श्रेणी की असचिंत भूमि के लिए निर्धारित औसत दर थी। दरों के निर्धारण में इस बात का प्रयास किया गया कि उपजाऊ भूमि अनउपजाऊ भूमि की सहायक बने। रामजे ने इस बन्दोबस्त के विषय में कहा कि– ''पिछले बन्दोबस्तों की तुलना में वर्तमान बन्दोबस्त में पिछली मांगों के आधार पर निर्भर रहने की प्रक्रिया को काफी कम कर दिया।

दरों के निर्धारण में बैकेट ने पर्याप्त परिश्रम किया उसने प्रत्येक गांव का स्वयं निरीक्षण किया तथा उस गांव के पुराने इतिहास पर भी विचार किया। इससे बैकेट को सांख्यिकी नियमों में सुधार करने में सहायता मिली। ट्रेल एवं बैटन के बन्दोबस्तों के समय क्षेत्रफल तथा राजस्व के आंकड़े उपलब्ध नहीं होते थे लेकिन बैकेट के बन्दोबस्त में इस व्यवस्था को बदल दिया गया।

यदि भू–राजस्व 'गूठ' (कुछ गांवों का राज्य मन्दिरों को दिया जाता था जिसे गूठ कहते थे।) तथा ''मुवाफी'' (व्यक्तिगत अनुदान) पर भी निर्धारित किया गया होता तो इनसे भी प्रतिवर्ष काफी आय प्राप्त होती। इनके अतिरिक्त सदाव्रत गांव भी थे। इन गांवों से होने वाली आय को धार्मिक कार्यों हेतु खर्च किया जाता था जैसे इस आय को तीर्थ–स्थलों को जाने वाले मार्गों में स्थित विश्राम गृहों तथा औषधालयों के रख–रखाव में खर्च किया जाता था। अल्मोड़ा जनपद में इन सदाव्रत गांवों की संख्या 121 थी जिनसे प्रतिवर्ष 5474 रू0 राजस्व प्राप्त होता था।

बन्दोबस्त में पहली बार जिस भू–क्षेत्र को कम अनुमानित किया गया था उसे भी राजस्व सूची में दर्ज किया गया। दसवें बन्दोबस्त का सबसे अधिक सार्थक लक्षण यह था कि इसके द्वारा नियमित खेतों की नाप की गयी थी जैसा कि मैदानों में होता था। बेटन के बन्दोबस्त के समय वास्तविक जांच नहीं की गयी थी लेकिन प्रत्येक थोक अथवा प्रत्येक सम्पत्ति के स्थानीय भूभाग की सर्वेक्षण कर्ताओं द्वारा जांच

की जाती थी उस जांच में नाली (दो सेर अनाज के बराबर की नाप) की संख्याओं का अनुमान लगाया जाता था।

यद्यपि बैकेट तथा रामजे ने यथा सम्भव वे सारे प्रयास किये जिसके द्वारा राजस्व निर्धारण करने में जनता के साथ अन्याय न हो तथा राजस्व निर्धारण में प्रत्येक गांव की वर्तमान व भविष्य की उन्नति के बारे में भी ध्यान दिया गया। लेकिन फिर भी वे इस बन्दोबस्त को भी दोषमुक्त नहीं रख सके क्यों कि अमीनों द्वारा अपने कार्य में लापरवाही अनभिज्ञता तथा बेईमानी का अनुसरण किया गया। अमीनों द्वारा प्रस्तुत प्रारम्भिक प्रविष्टियों में अनेक त्रुटियां थी। ग्रामवासियों में सतर्कता के अभाव तथा अज्ञानता के कारण ये त्रुटियां ठीक नहीं की जा सकी। कई मामलों में तो सम्बन्धित ग्रामवासी इस बात को वर्षों तक नहीं जान पाये कि प्रविष्ठियां गलत थी। बैकेट के इस बन्दोवस्त में अनेक मामलों में कई विशेष भागों के हिस्सेदारों अथवा खायकरों का नाम गलत दर्ज था। इन प्रविष्टियों में उन त्रुटियों की संख्या सबसे अधिक थी जिनमें संयुक्त खातों में खातेदारों के नाम गलत दर्ज थे। स्टोवेल चौगखां परगने के एक गांव का वर्णन करता है–वहां अमीन ने उस गांव के बाहर रहने के कारण अथवा बेईमानी के कारण गांव की समस्त भूक्षेत्र के विषय में गलत प्रविष्टियाँ बना दी और ये समस्त प्रविष्ठियां प्रमाणिक अभिलेख में दर्ज हो गयी। इस प्रकार लगभग वे सारे खेत जो ''अ'' के कब्जे में थे उन्हें ''ब'' के कब्जे में दिखा दिया गया तथा ''ब'' के खेत ''स'' तथा ''द'' के कब्जे में दिखा दिये गये।

ऐसा विदित होता है कि इसी कारण यहाँ के स्थानीय जनमानस में यह कहावत प्रचलित हुई कि ''नाम विकट और काम विकट'' लेकिन सर हेनरी रामजे ने जिसने कि 10वें भू–बन्दोबस्त की आख्या लिखी यह राय प्रकट की थी कि वह निर्धारण पूर्ण रूप से न्यायोचित था।

कमिश्नरी कार्यालय नैनीताल के काफी महत्वपूर्ण अभिलेख (रिकार्डस) नष्ट हो जाने के कारण इस बात का अनुमान लगाना बड़ा मुश्किल है कि इतने बड़े बन्दोबस्त के कार्य में स्टोवेल द्वारा उल्लेखित कमियां अस्वाभाविक नहीं थी विशेषकर पहाड़ी क्षेत्रों में जहाँ कि सामान्य स्थानों की अपेक्षा अधिक परेशानियां थी।

दसवें बन्दोबस्त की व्यवस्था में हेनरी रामजे ने मार्ग दर्शक के रूप में कार्य किया। किसी भी गांव के निर्धारण में शंका होने पर उसका निर्णय अन्तिम माना गया। रामजे ने ट्रेल के प्रशासन सम्बन्धी अधिकारों तथा बैटन के कार्यों में कानून व आदेश के प्रति स्नेह की भावना को जोड़ा। उसने अल्मोड़ा सहित सम्पूर्ण कुमाऊँ क्षेत्र को आइनी क्षेत्र बनाये रखने पर जोर दिया। रामजे के प्रयासों के फलस्वरूप ही 1863–64 ई॰ का भूमि बन्दोबस्त बिना मैदानों में लागू नियमों के अनुसार हो सका।

गूज द्वारा किया गया बन्दोबस्त (ग्यारहवां बन्दोबस्त)

अगला बन्दोबस्त गूज द्वारा 1900 ई॰ में किया गया। अंग्रेजों द्वारा अल्मोड़ा पर अधिकार किये जाने के बाद यह ग्यारहवां बन्दोबस्त था। पहले नौ बन्दोबस्त 1815 ई॰ से 1845 ई॰ तक 30 वर्षों की अवधि के अन्दर किये थे। इन बन्दोबस्तों में प्रत्येक ने पिछले बन्दोबस्त की तुलना में अधिक राजस्व दिया था, लेकिन यह वृद्धि बहुत कम अनुपात में थी, क्योंकि साधारण सर्वेक्षण कभी नहीं किया गया था केवल आबाद क्षेत्रफल का यथा सम्भव एक मोटा अनुमान लगाया गया था। वैज्ञानिक आधार पर बन्दोबस्त करने का पहला प्रयास 1872 ई॰ में दसवें बन्दोबस्त के रूप में बैकेट द्वारा किया गया था। गूज ने उसके तरीकों का बर्णन इस प्रकार किया है। उसने व्यवहारिक तौर पर सर्वेक्षण का माध्यम ''हैम्पन रोप'' (सन का बना हुआ रस्सा) का आविष्कार किया। सन का यह रस्सा 20 गज लम्बा होता था तथा इस रस्से में दो–दो गज की दूरी पर 10 गढ्ढे (निशान) बने होते थे। इस रस्से में नापी गयी नाप को बीसी कहा गया इसका बीसवां भाग नाली है यही नाम आज भी प्रचलित है। उसने एक मील के लिए 66'' इंच का पैमाना लागू किया जिसमें बहुत छोटे खेतों को भी नक्शे में दिखाया गया। उसने खेतों को मौके पर लम्बाई–चौड़ाई के आधार पर छांटा। समस्त भूमि को उसने पांच विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया, चूंकि समान सूचियां नही थी अतः समस्त क्षेत्र का मूल्यांकन पैदावार के औसत के अनुसार किया गया। मूल्यांकन का उसका तरीका अनोखा था उसने प्रत्येक क्षेत्र की भूमि के लिए सर्वप्रथम दाम निश्चित नहीं किये। उसने भिन्न–भिन्न श्रेणियों की भूमि के लिए आनुपातिक अनुमान की व्यवस्था प्रारम्भ की जिसके अन्तर्गत द्वितीय श्रेणी की असिंचित भूमि की एक बीसी को मापन इकाई माना गया और सम्पूर्ण नापे गये क्षेत्रों को इसके आधार पर अलग कर लिया गया। तत्पश्चात् उसने दाम निश्चित करने आरम्भ किये जो कि सामान्यतया उस क्षेत्र की पैदावार पर आधारित थे, लेकिन राजस्व वसूली की दर पैदावार की तुलना में कम थी। इस दर को इकाईयों की संख्या से गुणा करने पर उस गांव का निर्धारण निकाला गया।

बैकेट के बन्दोबस्त के परिणामस्वरूप राजस्व में काफी वृद्धि हुई। यह बन्दोबस्त तीस वर्षों तक कार्य करता रहा। निर्धारण के अधिक होने के विरुद्ध कोई शिकायतें नहीं की गयी थी राजस्व बिना किसी विरोध के वसूल किया जाता रहा और लगान वसूली हेतु की जाने वाली कठोर कार्यवाही से लोग अपरिचित रहे।

पहाड़ी क्षेत्रों में मैदान की भांति राजस्व का निर्धारण भूमि के वास्तविक मूल्य के आधार पर अथवा उसकी उपज के आधार पर नहीं किया जा सकता था। यह सत्य है कि बैकेट ने अपने बन्दोबस्त में पैदावार के औसत मूल्य के अन्दाज के आधार पर दरें निर्धारित की थी, परन्तु ऐसे अन्दाज यदि विश्वास

योग्य थे भी तो राजस्व का निर्धारण साधारण परिस्थितियों तथा एक स्थान से दूसरे स्थान की परिस्थितियों के अन्तर को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए था। मैदान की भांति पहाड़ में कृषि लोगों का मुख्य व्यवसाय नहीं था। पैदा किये गये अनाज की कीमत में से उचित भाग देने की उनकी क्षमता, उनके द्वारा आंशिक रूप से किये गये व्यापार अथवा नौकरी पर निर्भर करती थी। वास्तव में मालगुजारी का तात्पर्य समान लगान से था न कि जमीन की मालगुजारी से। जैसा कि इस शब्द का साधारण अर्थ जमीन की मालगुजारी से था।

वर्तमान बन्दोबस्त का कार्य जिस तरीके से किया गया था उनमें एकरूपता नहीं थी। अल्मोड़ा जिले के प्रथम भाग में शोर परगने को बन्दोबस्त के अधीन रखा गया। राजस्व परिषद् द्वारा निर्धारित प्रारम्भिक नियमों में संशोधन करने की आवश्यकता थी। इन प्रारम्भिक नियमों में जमीन के सर्वेक्षण तथा एवं पूर्व अभिलेखों (रिकार्डस) में संशोधन को बन्द करने का प्रयास किया गया था। नयी आबाद की गयी जमीन को भी इस नियम के अनुसार नहीं नापा जाना था। बन्दोबस्त अधिकारी को क्षेत्रफल का केवल मोटा अनुमान निकालना था लेकिन यह व्यवस्था उचित साबित नहीं हुई। गूज ने पाया कि लोगों ने गांवों में अपनी मूल आबाद जमीन के आधार पर अपनी जमीन को बढ़ाया नहीं था। परन्तु व्यक्तिगत सह खातेदारों द्वारा परिश्रम एवं धन के बल पर बेकार जमीन को आबाद करके काश्त बड़ा ली गयी थी। यद्यपि कदाचित बन्दोबस्त अधिकारी इस बात का मोटा अन्दाज तो लगा सकते थे कि कितने क्षेत्र में नयी जमीन आबाद की गयी है तथा पूरे गांव के लिए कितना राजस्व निर्धारित किया जाना चाहिए। परन्तु बन्दोबस्त अधिकारी के लिए यह असम्भव था कि वह स्पष्ट रूप से जांच पड़ताल किये बिना अधिकारों का अभिलेख तैयार कर यह निर्णय कर सके कि प्रत्येक व्यक्तिगत सहखातेदार को कितना कर देना है तथा लोग भी इस नयी मांग का आपस में बंटवारा करने योग्य नहीं थे जो कि सम्पूर्ण गांव पर लगायी गयी थी। अतः इस व्यवस्था के संशोधन की आवश्यकता थी। इस बन्दोबस्त में अधिकारों के अभिलेख में साधारण संशोधन की कोई चेष्ठा नहीं की गयी तथा न ही जमीन का पुनः वर्गीकरण किया गया लेकिन समस्त नयी आबाद की गयी जमीन की नाप लिया गया और उसके लिये अधिकारों का अलग अभिलेख तैयार किया गया व नयी आबाद जमीन तथा उससे सम्बन्धित मालगुजारी सूची प्रत्येक खातेदार द्वारा देय धनराशि सहित दिखायी गयी।

नयी मांग को पूर्वकालिक एवं प्रयोग में आये बन्दोबस्तों के सिद्धान्तों में हल्का सा संशोधन करके लागू किया गया। जिले में जहॉ पर काश्तकारों द्वारा देय लगान के आंकड़े उपलब्ध नहीं थे तथा जहॉ जमीन के सही मूल्यांकन के आधार पर राजस्व के निर्धारण का आंकलन नहीं किया जा सकता था व अन्य तरीके भी सम्भव न थे वहाँ पर दो तथ्य विचारणीय थे–1. नयी आबाद जमीन का मूल्यांकन, 2.

पिछले बन्दोबस्त से पुरानी खेती के मूल्य में हुई वृद्धि। अतः नयी आबाद जमीन के मूल्यांकन के लिए बैकट द्वारा तो निर्धारित दरों को आधार माना गया था लेकिन अब परिस्थितियों के अनुसार उसमें आवश्यक संशोधन भी किये गये। दूसरा तथ्य यह है कि पिछले बन्दोबस्त से पुरानी खेती के मूल्य में हुई वृद्धि के निर्धारण हेतु गूज को अपने ही विवेक पर निर्भर रहना पड़ा। अतः सम्पूर्ण पट्टी की परिस्थितियों तथा विशेषकर प्रत्येक गांव की परिस्थितियों को देखते हुये निर्धारण किया गया। अल्मोड़ा जिले में नयी दरों का मूल्यांकन 5835 ग्रामों में से केवल 690 ग्रामों में ही लागू किया गया।

अल्मोड़ा जिले के लिए नया राजस्व 2,67,559 रू. था जो पिछले राजस्व से 22.47 प्रतिशत अधिक था। प्रत्येक भूमि की इकाई (बीसी) के लिए अल्मोड़ा में नयी मांग 12 आने 8 पैसे थी जब कि पिछले बन्दोबस्त में वह केवल 12 आने थी। मालगुजारी मुक्त तथा नियत मालगुजारी की सूची वही रही जो बैकेट के बन्दोबस्त में थी।

दसवें बन्दोबस्त की समाप्ति पर सर हेनरी रामजे ने कुछ थोकदारों को दी जाने वाली धनराशि में वृद्धि कर दी थी। बैकेट ने इन लोगों की जो कि पहाड़ में पुलिस तथा कुछ अन्य प्रशासनिक कार्य करते थे उनकी पुरानी ''सनदों'' में सम्मिलित गांवों की मालगुजारी का 3 प्रतिशत अनुमन्य किया था परन्तु थोकदारों के द्वारा अपील करने पर इनको कुछ मामलों में 6 प्रतिशत तथा अन्य दूसरे मामलों में 10 प्रतिशत तक दिया गया था। गूज ने इस प्रश्न को राजस्व परिषद के आदेशार्थ संदर्भित किया और रामजे के आदेशानुसार अतिरिक्त धन को सरकारी मालगुजारी से देते रहने की मन्जूरी दी।

1930 ई॰ में गूज द्वारा किये गये बन्दोबस्त की अवधि पूरी हो जाने पर सरकार ने एक बार पुनः बन्दोबस्त की अवधि पूरी हो जाने पर एक बार पुनः मालगुजारी की दरों में 33 प्रतिशत की वृद्धि करने का प्रयास किया तथा एक नये बन्दोबस्त का कार्य आरम्भ कर दिया। लेकिन जनता ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई तथा सरकार से मालगुजारी की दरों में वृद्धि न करने की मांग की। सरकार को जनता की मांग स्वीकार करनी पड़ी इस प्रकार 1930 ई॰ में कोई बन्दोबस्त नहीं किया गया। और 1901 ई॰ में गूज द्वारा किया गया ग्यारहंवा बन्दोबस्त ब्रिटिश कुमाऊँ में हुआ अन्तिम बन्दोबस्त था।

राजस्व मामलों से सम्बन्धित अदालतें –

राजस्व सम्बन्धी मामलों के लिए राजस्व अदालतें हुआ करती थी लेकिन 1815 ई॰ से 1829 ई॰ तक राजस्व तथा सिविल मामलों के लिए केवल एक ही अदालत थी। राजस्व अदालतों की स्थापना से पूर्व ब्रिटिश राजस्व प्रशासन का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार निम्न से हैं–1829 ई॰ में मुन्सिफ के पद का सृजन किया गया यह पद आर॰ एम॰ बर्ड की संस्तुति पर ब्रिटिश शासनकाल में देशी अदालतों की शिकायतों को दूर करने के लिए बनाया गया था। मुन्सिफों की संख्या आठ निर्धारित की गयी जिनमें से

सात कानूनगो थे तथा एक न्यायालय पण्डित था जिसे सदर अमीन भी कहते थे। 1814 ई॰ के नियम 23 (रेगुलेशन–111) के अधीन उनके मार्गदर्शन हेतु नियम बनाये गये। इन अधिकारियों को चालू वर्ष के किराये के सम्बन्ध में जानवरों द्वारा किये गये नुकसान के ऐसे दावों की सुनवायी का अधिकार दिया गया जो 25 रू0 तक के हों। 1830 ई॰ में उनके अधिकार क्षेत्र में वृद्धि करके उन्हें 50 रू0 तक के दावों की सुनवायी का अधिकार दिया गया। सदर अमीन को 100 रू0 तक की कीमत के दावों की सुनवायी का अधिकार था इससे अधिक कीमत वाले धन एवं जायदाद सम्बन्धी दांवों की सुनवायी कमिश्नर के न्यायालय में होती थी।

स्टाम्प शुल्क दावों की प्रकृति के अनुसार दो प्रतिशत तक बड़ा दिया गया था। सिविल दावों से सम्बन्धित प्रक्रिया का उल्लेख ट्रेल द्वारा सरकारी सचिव को सम्बोधित पत्र में मिलता है। जिससे मालूम होता है कि सिविल दावों को प्रारम्भ करने के लिए जो आठ आने के स्टाम्प कागज पर लिखने की आवश्यकता होती थी, लेकिन उसे दायर करने के लिए कमिश्नर न्यायालय में अन्य कोई शुल्क नहीं लगता था। तत्पश्चात् न्यायालय द्वारा ''इतलानामा'' के रूप में एक आदेश जारी किया जाता था साधारणतया इस प्रक्रिया का परिणाम दावे का आपसी समझौते में परिणित होना था, अन्यथा दोनों पक्षों को बुला कर उनके गवाहों सहित बिना शपथ दिलाये मौखिक बयान लिए जाते थे। जायदाद के बंटवारे से सम्बन्धित दावों को साधारणतः दोनों पक्षों द्वारा चुने गये पंचों को भेज दिया जाता था।

राजस्व की सदर परिषद के सदस्य आर॰एम॰ बर्ड ने 13 जून 1837 ई॰ को कुमाऊँ क्षेत्र के प्रशासन पर एक टिप्पणी लिखी जिससे अल्मोड़ा जनपद की प्रशासनिक व्यवस्था का परिचय भी मिलता है। (अल्मोड़ा जनपद में भी राजस्व प्रशासन से सम्बन्धित वही नियम लागू थे जो सम्पूर्ण कुमाऊँ में लागू थे।) इस टिप्पणी में उसने यह संस्तुति की कि सिविल न्याय प्रशासन की निगरानी उच्च प्राधिकारियों द्वारा की जानी चाहिए और यह परामर्श दिया कि यहाँ आसान नियम लागू किये जाय तथा न्यायालय के फैसले सदर न्यायालय व राजस्व परिषद् की अपील के नियन्त्रणाधीन हों। बर्ड के सुझावों के अनुसार 1836 ई॰ में एक्ट–10 पास किया गया जिसमें केवल सिविल मामलों में सदर दीवानी आदलत के नियन्त्रण की व्यवस्था की। 1874 ई॰ में न्याय प्रशासन विषयक नियम पारित किये गये। इन नियमों के द्वारा सेशन न्यायालय के अधिकार निर्धारित किये गये और यह भी कहा गया कि दीवानी मामलों में कमिश्नर उच्च न्यायालय के अधीन नहीं होगा। कमिश्नर के लिए यह आवश्यक था कि वह प्रत्येक माह उच्च न्यायालय के माध्यम से एक सूची सरकार को भेजे इस सूची में प्रत्येक माह निबटाये गये दावों की संख्या, अधीनस्थ अदालतों में निलम्बित मामलों की संख्या, सभी अपीलें तथा ऐसे मामले जिनमें उसे उच्च

न्यायालय के न्यायधीश के अधिकार प्राप्त थे आदि का विवरण होता था। यद्यपि राजस्व परिषद् को राजस्व मामलों में संशोधन के अधिकार प्राप्त थे परन्तु उनका उपयोग यदा कदा ही किया जाता था।

कमिश्नर के अतिरिक्त एक वरिष्ठ सहायक, एक सदर अमीन और एक मुन्सिफ, न्यायधीश के रूप में 1914 ई॰ तक कुमाऊँ के अन्य जिलों की तरह अल्मोड़ा जिले में भी कार्य करते रहे इनके न्यायालयों से सम्बन्धित मामलों की अपील एक निर्धारित अवधि में की जानी होती थी। वास्तविक जायजाद से सम्बन्धित मामलों का निबटारा कमिश्नर अथवा उसके वरिष्ठ सहायक के न्यायालय में होता था। किसी भी कानूनी प्रतिनिधि को पैरवी की अनुमति नहीं होती थी परन्तु जो लोग अदालत में आने में असमर्थ होते थे उन्हें किसी व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करने की अनुमति होती थी। इस नियम के द्वारा अनावश्यक झगड़ों एवं मुकदमों की कार्यवाही में होने वाले विलम्ब को रोक दिया गया। 1914 ई॰ में कुमाऊँ क्षेत्र के लिए एक स्वतन्त्र न्याय विभाग स्थापित हुआ तथा एक जिला न्यायाधीश की नियुक्ति की गयी। जिला न्यायाधीश के अधीन कोई सिविल न्यायाधीश अथवा मुन्सिफ नियुक्त नहीं किये गये लेकिन, डिप्टी कमिश्नर तथा तहसीलदार राजस्व के मामलों में न्यायाधीश का कार्य करते थे। यह प्रणाली आजादी तक लागू रही। किसी भी न्यायालय का पदासीन अधिकारी उस मामले की सुनवायी नहीं कर सकता था जिनमें वह स्वयं एक पक्ष का हो अथवा जिस मामले में उसकी व्यक्तिगत रूप से रूचि हो। ऐसे मामलों में जहाँ न्यायालय को उत्तराधिकारी महिलाओं के विशेष जायजाद के मामले, बसीयतनामे तथा बंटवारे के विषय में निर्णय करना हो तो ऐसे विषयों में निर्णय करने का नियम दोनों पक्षों में प्रचलित ऐसे रिवाज के अनुसार था जो रिवाज न्याय समानता के विपरीत न हो।

राजस्व सम्बन्धी समस्त अदालतें राजस्व परिषद् के अधीन थी। राजस्व अदालतों से सम्बन्धित एक बहुत बड़ी विषमता यह थी कि संयुक्त प्रान्त के मैदानी जिलों में तो बहुत पहले से ही लिखित राजस्व कानून थे जिसमें कृषि की स्थिति के अनुसार समय–समय पर संशोधन किया गया था, लेकिन कुमाऊँ के गैर आइनी जिले अल्मोड़ा में (तथा नैनीताल में भी) राजस्व तथा काश्तकारी कानून अलिखित रहे यहाँ जमीन सम्बन्धी मामलों में कमिश्नर तथा राजस्व परिषद् के निर्णय ही एकमात्र कानून होते थे।

काश्तकारी (कृषि एवं जायजाद सम्बन्धी) के अधिकार –

भूमि के स्वामित्व के अधिकार देशी राजाओं के समय में सरकार में विहित थे। ट्रेल ने इस सम्बन्ध में लिखा है–''जायजाद सम्बन्धी अधिकार साम्राज्य में निहित होते थे इस अधिकार को प्रजा ने न केवल लिखित रूप से स्वीकार किया बल्कि उसकी व्यावहारिकता भी थी और जमीन सम्बन्धी लेन–देन पर साम्राज्य का असीमित अधिकार था। इस प्रकार काश्त (आबाद जमीन) कभी भी हटाने योग्य नहीं थी

क्योंकि यह राजसी अनुदान द्वारा प्राप्त होती थी साम्राज्य की इच्छा सर्वोच्च थी। चाहे काश्त के स्वामी का कोई कसूर हो अथवा न हो।

कृषि सम्बन्धी जमीन को अल्मोड़ा जिले में थात कहते थे और थात की स्वीकृति से कर रहित जमीन में उपज प्राप्त की जाती थी। कालान्तर में ऐसी कर रहित जमीनों का किराया भी लगान सूचियों में शामिल कर लिया गया, लेकिन साधारणतयाः भूमि जिस व्यक्ति को स्वीकृत की गयी होती थी वह उसके उत्तराधिकारियों के पास सुरक्षित रहती थी। इस प्रकार की अनुदान भूमि पर मूल जमींदारों का अधिकार बड़ी मात्रा में पाया जाता था। ट्रेल ने लिखा है कि मूल जमींदार (थातवान) अपनी जमीन को पैत्रिक तथा हस्तान्तरण करने योग्य सम्पत्ति के रूप में रखते थे, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रिटिश शासन काल से पूर्व कृषकों का जमीन पर अधिकार हस्तान्तरण योग्य नहीं था क्योंकि स्थानीय परम्पराओं के अनुसार व्यक्तिगत अधिकारों का आरम्भ ब्रिटिश नियमों के लागू होने पर ही हुआ।

निवासी कृषकों को दो भागों में बांटा गया था–खैकर और कैनी। जहाँ पर अनुदान की जमीन दूसरों के कब्जे में थी वे मूल मालिक यदि उस जमीन पर बने रहते थे तो स्थानीय रिवाज के अनुसार नये अनुदान वाले उसमें से एक तिहाई को अपने कब्जे में ले सकते थे। और बांकी का अधिकार मूल कब्जेदारों का होता था जिन्हें खेकर (खेकर अथवा खायकर का अर्थ है आसामी खाय+कर जो जमीन कमाये तथा कर दे) अथवा थातवान से कुछ अलग मालिक माना जाता था। सरकारी मालगुजारी (सिरती) के अतिरिक्त खेकर को कई अन्य देयक (कर) मालिक को देने के लिए कहा जाता था, जो भेंट (विशेष देयक नगद भुगतान के रूप में) ''दस्तूर'' (अनाज के रूप में देय) तथा ''पिठाई'' (नाममात्र का वार्षिक किराया) आदि के नाम से जाने जाते थे। बन्दोबस्त की अवधि में ''खेकरों'' का किराया किन्हीं भी परिस्थितियों में नहीं बढ़ाया जा सकता था।

''कैनी'' की स्थिति देशी सरकार के समय में गुलाम की तरह थी। ये अपने मालिकों की जायजाद से बंधे हुये थे। धीरे धीरे इन्होंने स्थायी निवासी कृषकों की स्थिति प्राप्त कर ली और कालान्तर में ये ''खेकरों'' की तरह माने जाने लगे। केवल किराया वसूल करने के अर्थ में ये खेकरों से अलग थे।

हिस्सेदारी के अधिकार भी अंग्रेजों द्वारा प्रारम्भ किये गये। दूसरे प्रकार के निवासी कृषक जो अपने स्वामियों की जमीन पर उनकी अनुपस्थिति अथवा अन्य कारणों से कब्जेदार थे। ये कृषक किराये के रूप में अपनी पैदावार का एक तिहाई भाग अथवा तत्कालीन लागू दरों के आधार पर नकद किराया देते थे। जिन गांवों में निवासी कृषक जमीन की कोई मांग नहीं करते थे तो उस गांव में जमीन का मालिक नजदीकी गांव के रहने वालों को जमीन किराये पर दे सकता था। इसको ''पालकाश्त'' आबाद जमीन के नाम से जाना जाता था। इस प्रकार की अनिश्चित खेती की लगान की दर दूसरी जमीन की अपेक्षा कम

होती थी। साधारण गांवों में कई हिस्सेदारों के हिस्सों का उल्लेख अलग–अलग दर्ज किया जाता था जो अपूर्ण हिस्सेदारी की प्रथा के रूप में था। कुछ भूमि सम्मिलित भूमि के रूप में भी होती थी। जिसे ''गांव संजायत'' कहा जाता था। इस भूमि पर नयी हिस्सेदार अपने–अपने भूभागों के अनुपात में स्वामी होते थे। कोई भी हिस्सेदार गांव संजायत भूमि से अपने हिस्से की भूमि को अलग करवा सकता था ऐसा किये जाने पर शेष जमीन गांव संजायत जमीन न रहकर केवल बांकी हिस्सेदारों की ही संजायत जमीन कहलाती थी। जहां मालिक एक ही वंश के होते थे वहॉ साधारणतया ऐसी खेती को भाई बांट कहा जाता था और उस जमीन पर सभी वंशानुगत खातेदारों का अपने–अपने हिस्से के अनुसार अधिकार होता था। इस प्रकार ब्रिटिश शासनकाल में प्रत्येक वर्ग का अपनी खेती पर अपने–अपने हिस्से के अनुसार स्वतंन्त्र एवं पूर्ण अधिकार होता था, परन्तु मालगुजारी देने के लिए उनकी संयुक्त जिम्मेदारी होती थी।

जनपद अल्मोड़ा में भी कुमाऊँ के अन्य भागों की तरह लगातार बिना नापी हुई बेकार पड़ी जमीन को जो कि नाप जमीन के नजदीक होती थी, खेती के काम में लाकर आबाद जमीन में वृद्धि की जा रही थी। यह प्रथा प्राचीन समय से ही चली आ रही थी जब कि जनसंख्या कम थी अर्थात् जनसंख्या के अनुपात में जमीन बहुत अधिक थी। अतः लोग जिस तरह चाहते थे उस तरह से खेती करते थे। जंगलों को उस समय अधिक मात्रा में समझा जाता था अतः लोगों को नयी आबाद जमीन पर खेती करने से रोकने तथा जंगलों की सुरक्षा की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था।

अंग्रेजों ने नयी काश्त (आजाद जमीन) को दो अलग–अलग श्रेणियों में विभाजित किया। 1. पहली प्रचलित प्रथा के अनुसार नाप जमीन से मिली हुई बेकार पड़ी जमीन से खेती बढ़ाना, 2. नयाबाद काश्त जो कि जमीन के वे भाग थे जो दूर थे अथवा सरकारी जंगलात जो कि उनकी काश्त से अलग थोक में होते थे।

इसके विषय में पौ ने लिखा है कि ''देश में ऐसी प्रथा प्रचलित है कि ग्रामीण आपसी समझौते के अनुसार अपनी मालगुजारी निर्धारित नाप जमीन के चारों ओर बेकार पड़ी जमीन में खेती बड़ा लेते हैं तथा अलग वाले थोकों में काश्त बढ़ाने के लिए नयाबाद मन्जूरी की आवश्यकता होती है। नयी काश्त छोटी हो या बड़ी, इस काश्त बड़ाने की प्रथा के सभी मामलों में प्रशासनिक स्वीकृति की आवश्यकता 1887 ई0 में पैदा हुई ताकि इमारती लकड़ी नष्ट किये जाने पर नियन्त्रण रखा जा सके। चूंकि इस प्रकार की स्वीकृतियों के आवेदन पत्रों की प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में आते थे जिससे इनकी व्यापक जांच असम्भव थी। अतः आवेदन पत्रों को मात्र सूचनार्थ पटवारी के पास भेज दिया जाता था और पटवारी द्वारा आवेदक के पक्ष में स्वीकृति दिये जाने पर आवेदन पत्र मंजूर कर दिया जाता था। यह प्रथा आफत सिद्ध हुई क्योंकि इससे कई अवांछनीय व्यक्तियों द्वारा पटवारियों के अधिकारों का दुरुपयोग किया

गया जिससे उन्होंने दूसरे लोगों के कब्जे की जमीन को अपने नाम पर मंजूर करा लिया। कमिश्नर जी0आर0 रीड (1888 ई0 से 1889 ई0 तक) ने इस प्रथा को समाप्त करने के लिए दि0 1/1/1889 ई0 को आदेश जारी किये लेकिन इन आदेश का कोई प्रभाव नहीं हुआ और यह प्रथा जारी रही। आगे बड़कर इस प्रकार के आवेदन पत्रों को राजस्व परिषद् के आदेश संख्या 199/1–534 दिनांक 1/3/1893 ई0 द्वारा अनावश्यक घोषित कर दिया गया और उसमें यह भी कहा गया कि जो छोटे भूखण्ड, आबाद जमीन तथा बेकार जमीन के बीच में हो उन्हें गांव समुदाय के लिए छोड़ दिया जाये। व्यक्तिगत मामलों में स्वीकृति देने के अतिरिक्त इस प्रकार की आबाद जमीन पर केवल एक ही रोक थी कि जहाँ पेड़ों को काटना पड़ता हो वहां आबाद जमीन में वृद्धि डिप्टी कमिश्नर की स्वीकृति के बिना नहीं की जा सकेगी। यह स्वीकृति इसलिए भी लाभदायक थी कि इसके कारण जायजाद के स्वामित्व के अधिकार दूसरों को नहीं दिये जा सकते थे।

1897 ई0 में पुरानी आबाद जमीन के चारों ओर आबाद जमीन में वृद्धि करने विषयक नयी प्रथा लागू की गयी इस प्रथा के अनुसार गांव वालों को अधिक स्वतन्त्रता प्रदान की गयी। इस प्रथा को घेरा प्रथा (जोन सिस्टम) कहा गया। इस प्रथा के द्वारा यह तय किया गया कि खेती में उचित वृद्धि हेतु गांव में नापी गयी जमीन के चारों ओर कुछ क्षेत्रों की घेराबन्दी कर ली जाय तथा जिन गांवों में ऐसे क्षेत्र न हो वहाँ उस गांव की सीमा पर मिली हुई जमीन पर या वहीं अलग जगह पर स्थान बना लिया जाय। ऐसे घेराबन्दी वाले क्षेत्रों में गांव वालों को यह आदेश दिया गया कि वे बिना किसी अनुमति के इस जमीन को साफ कर खेती के काम में ले आये तथा आगामी बन्दोबस्त तक इसमें कोई मालगुजारी वसूल नहीं होगी। घेराबन्दी के क्षेत्रों के अन्तर्गत जमीन को केवल पेड़ काटने को छोड़कर अन्य प्रयोजनों हेतु जिला वन नियमों से बाहर माना गया। नये आबाद नियमों के अधीन मंजूर जमीन को छोड़कर अन्य स्थानों पर जमीन आबाद नही की जा सकती थी इसमें यह सिद्धान्त निहित था कि लोगों को इस बात की अनुमति है कि वे अपनी वर्तमान आबाद जमीन के साथ जुड़ी हुई बेकार पड़ी जमीन में खेती बड़ा सकते हैं तथा निर्धारित क्षेत्रों से बाहर जो भी खेती की जाय उसकी अनुमति नये आबाद नियमों के अधीन ली जाए तथा नयी जमीन को, वह मालगुजारी निर्धारित क्षेत्र के भीतर हो या बाहर आबाद करने हेतु पेड़ों को काटना पड़ रहा हो तो डिप्टी कमिश्नर की स्वीकृति के बिना अनुमन्य नहीं माना जायेगा। अतः अब घेराबन्दी क्षेत्र के बाहर की जमीन पर खेती बड़ाने के मामले नयाबाद नियमों के अन्तर्गत आ गये। नयाबाद अनुदान के प्रत्येक मामले में विशेष जांच एवं स्वीकृति की आवश्यकता होती थी और ऐसे समस्त मामलों में सरकार का हस्तक्षेप था अतः सरकार ही जायजाद के अधिकार तथा मालगुजारी का भुगतान तय करती थी।

इन नियमों में नयाबाद अनुदान में कुछ विचारधीन स्थितियों को निर्धारित किया गया था। जिनके अनुसार नयाबाद अनुदान की संस्तुति केवल वहीं की जाती थी जहॉ जंगल एवं बेकार जमीन बहुत अधिक थी तथा जिस गांव की सीमा पर ऐसी जमीन थी जहाँ के निवासियों को अनुमति दी जाती थी। ग्रामीण जनता सरकार से नयाबाद स्वीकृति द्वारा स्वामित्व के अधिकार देने का झगड़ा नहीं कर सकती थी।

उपर्युक्त ढांचे से बेकार पड़ी जमीन पर जो कि नाप जमीन से मिली हुई थी, खेती बढ़ाने का प्रयास किया गया था। यह परिवर्धन (खेती बढ़ाने का) का विषय ग्रामीण जनता के सिविल अधिकारों से बिल्कुल अलग था। सरकारी बेनाप भूमि पर खेती बढ़ाने को छोड़कर उस जमीन की पैदावार के सम्बन्ध में कई अन्य अधिकार जनता को प्राप्त थे। इन अधिकारों के अतिरिक्त जानवरों को चराने, घास काटने, जलाने की लकड़ी काटने, मकान तथा कृषि के प्रयोजन हेतु इमारती लकड़ी लेने तथा जंगली फल एवं जंगली मधुमक्खियों का शहद लेने का अधिकार भी जनता को था।

उपर्युक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यद्यपि अल्मोड़ा जिले में ब्रिटिश राजस्व प्रशासन गोरखों की तुलना में (जो कि अंग्रेजों के पूर्वाधिकारी थे) अच्छा था तथा न्यायालय योजनाबद्ध थे परन्तु अंग्रेजी व्यवस्था भी दोषों से मुक्त न थी क्योंकि यह व्यवस्था अंग्रेजों के अपने हित में जनपद की जनता को उकसाये जाने वाली थी। अंग्रेजों ने यहां राजस्व वृद्धि करने में गर्व महसूस किया। अंग्रेजों के अनुसार ऐसा आबाद जमीन में वृद्धि के कारण हुआ। ब्रिटिश प्रशासकों के अनुसार अल्मोड़ा में राजस्व बिना किसी परेशानी के वसूल किया जाता रहा और कभी भी राजस्व वसूली के लिए सरकार द्वारा कड़े कदम नहीं उठाये गये जिससे यह विदित होता है कि प्रत्येक बन्दोबस्त में राजस्व में वृद्धि हमेशा उचित थी लेकिन वास्तव में राजस्व में वृद्धि केवल कृषि हेतु आबाद जमीन में वृद्धि के कारण नहीं थी वरन् इसके अनेक अन्य कारण भी थे। यहां की जनता ने चुपचाप मालगुजारी का भुगतान केवल इसलिए नहीं किया कि राजस्व वृद्धि उचित थी वरन् ऐसा अनेक कारणवश हुआ। सर्वप्रथम प्रारम्भिक बन्दोबस्तों के समय लोग गोरखा शासकों के कठोर नियमों को भूले नहीं थे अतः उन्होंने पाया कि ये बन्दोबस्त गोरखा बन्दोबस्त (1812 ई0 में) से कही अधिक अच्छे थे, अतः उन्होंने इन्हें स्वीकार कर लिया। दूसरी बात यह थी कि यहां की अधिकांश ग्रामीण जनता अनपढ़ थी जिसके कारण वह अपने अधिकारों से परिचित नहीं थी अतः अशिक्षित जनता से जो कुछ भी लगान मांगा गया उसने इस विश्वास के साथ दे दिया कि वह उचित है। इन सबके अतिरिक्त मिला–जुला कारण यह भी था कि अंग्रेजों के सख्त प्रशासन के दौरान यहां की अनपढ़ जनता में न तो एकता थी तथा न ही उनमें इतना साहस था कि वे अंग्रेजों की राजस्व

वृद्धि के विरुद्ध आवाज उठा सके क्योंकि अनेक व्यक्ति अपने स्वयं के हित के लिए अंग्रेज परस्त बन गये थे, जिन्होंने हमेशा स्थानीय जनता अर्थात् अपने ही लोगों को गुमराह किया।

उपर्युक्त निष्कर्ष के समर्थन में प्रबल प्रमाण यह है कि जनपद अल्मोड़ा की जनता अधिक संख्या में पढ़ी लिखी हो गयी तो उसमें राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना जागृत हुई। इस जागृति के फलस्वरूप जनता ने अपने अधिकारों को जाना और निर्धारण में हुई बृद्धि के विरुद्ध अपनी आबाज बुलन्द की। 1930 ई0 में बन्दोबस्त अधिकारी इर्बटसन ने नया भू–बन्दोबस्त करने की कोशिश की इस बन्दोबस्त में 30 प्रतिशत लगान बढ़ाने का प्रावधान था अतः जनता ने इस बन्दोबस्त के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। अल्मोड़ा जिले की सल्ट पट्टी में इसका कड़ा विरोध हुआ। इस पट्टी में सैकड़ों ग्रामीणों ने गिरफ्तारियां दी। इसी कारण सल्ट को दूसरी बार दोली कहा गया। यह पहली घटना थी जब कि अल्मोड़ा के कृषकों ने ब्रिटिश नीति के विरुद्ध रोष व्यक्त किया, अतः सरकार को बन्दोबस्त को स्थगित करना पड़ा। यदि यही बन्दोबस्त पचास साल पहले किया होता तो जनता ने पूर्व उल्लेखित कारणों के आधार पर इस बन्दोबस्त को स्वीकार कर लिया होता।

सन्दर्भ –

1. पांडे, बद्रीदत्त (1937), कुमाऊँ का इतिहास, अल्मोड़ा, पृ॰ 458
2. एटकिन्सन, ई॰टी॰ (1886), हिमालयन गजेटियर, वाल्यूम–3, पृ॰ 478
3. रामजे, हेनरी (1861), रिपोर्ट आन दि सेटिलमेंट रिपोर्ट आफ कुमाऊँ, पृ॰ 4
4. बैकेट, जे॰ओ॰बी॰ (1886), रिपोर्ट आन दि सेटिलमेंट आफ कुमाऊँ, पृ॰ 1
5. पातीराम (1965), गढ़वाल–एनशियेन्ट एण्ड माडर्न, पृ॰ 212–213
6. स्टोवेल, बी॰ए॰ (1937), मैनुअल्स आफ दि टेनरर्स इन कुमाऊँ, पृ॰ 17
7. गूज, जे॰ई॰ (1903), सैटिलमेंट रिपोर्ट आफ डिस्ट्रिक्ट आफ अल्मोड़ा एण्ड हिल पट्टीज आफ नैनीताल डिस्ट्रिक्ट, पृ॰ 15
8. शक्ति, साप्ताहिक, 26 जनवरी, 1950
9. ट्रेल (1928), स्टैटिस्टीकल स्केच आफ कुमाऊँ, पृ॰ 139
10. पौ (1896), दि गढ़वाल सेटिलमेंट रिपोर्ट, पृ॰ 41
11. रन्धावा, एम॰एस॰ (1970), दि कुमाऊँ हिमालया, पृ॰ 11